मिड-डे-मील

नसीम अख्तर

कुछ महीनों से अपने काम के सिलसिले में अक्सर सरकारी स्कूलों में जाना होता है। इसी प्रक्रिया में एक दिन सरकारी स्कूल गई थी। अच्छी है या बुरी, नहीं मालूम, लेकिन मेरी पुरानी आदत है कि मैं कहीं भी, किसी भी काम से जाती हूँ तो केवल उसी काम तक स्थिर नहीं रह पाती बल्कि मेरी नज़रें हर ओर दौड़ने लगती हैं।

ऐसे ही उस दिन मैं सरकारी स्कूल के लॉन में खड़ी इधर-उधर देख रही थी कि मेरी नज़र लॉन के बीचों-बीच रखे दो डिब्बों पर पड़ी। थोड़ी ही देर में उन डिब्बों के सम्बन्ध में मैंने स्वतः अनुमान लगाया जिस पर मुझे उस समय आश्चर्य और बाद में अपराध-बोध हुआ। क्योंकि वे डिब्बे दूर से काफी गन्दे दिख रहे थे (और थे भी) इसलिए मैंने अनुमान लगाया कि ये कचरे के डिब्बे हैं।

उन डिब्बों से कुछ दूरी पर तीन-चार और उससे कुछ और दूरी पर पाँच-छह बच्चों का समूह बैठा था। मैं उन बच्चों से कुछ बातचीत करने पास गई तो देखा कि उन सभी के हाथों में रोटियाँ और दाल की प्लेटें थीं, वे सभी मध्याह्न भोजन कर रहे थे। उन्हें बड़े चाव से खाना खाते देख मैंने पूछा, "आप लोगों को मिड-डे-मील कैसा लगता है?"

"बहुत बढ़िया," उनमें से एक खुश होते हुए बोला।

"अच्छा! तुम लोगों को सीमित खाना खाने को मिलता है या चाहे जितना खा सकते हो?" मैंने फिर पूछा।

"चाहे जितना खा सकते हैं," वे सभी खुश होते हुए बोले।

फिर मैं उस दूसरे समूह में गई जिसमें चार लड़कियाँ और दो लड़के थे। उनमें एक सबसे छोटी बच्ची नीचे मुँह करके निर्वेग भाव से खाना खा रही थी। क्योंकि वह मुझे बहुत प्यारी लग रही थी इसलिए किसी बहाने से उससे बातचीत करने का मन कर रहा था, मैंने उससे पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है?"

"सना," उसने ऊपर मुँह करते हुए बताया। "तुम्हारे पापा क्या काम करते हैं?" मैंने फिर पूछा (जो कि शायद मुझे नहीं पूछना चाहिए था)। "शराब पीते हैं।"

उसके इस जवाब से, जो कि मेरे लिए अकल्पनीय था, मुझे ज़ोर का झटका लगा।

फिर मुझे उससे या किसी और बच्चे से कुछ भी पूछने की हिम्मत नहीं हुई और मैं वहाँ से चली आई। सभी बच्चे उसी चाव से खाना खाते रहे।

***

इसी प्रकार एक दिन मैं अपने काम से एक अन्य सरकारी स्कूल में गई थी। हम कक्षाओं में ही थे कि बच्चों का लंच हो गया, सभी बच्चे अपने-अपने बस्ते से थाली और चम्मच निकालकर खुशी-खुशी दौड़ पड़े। उस स्कूल में उन बर्तनों को जिनमें बच्चों का मिड-डे-मील आया था, शौचालय में साफ किया जा रहा था।

इन दोनों के अलावा एक और सरकारी स्कूल है जहाँ मेरा अक्सर जाना होता है, उस स्कूल के अन्दर जाते वक्त हर किसी को अपनी नाक बन्द करके जाना पड़ता है जिसका कारण उस स्कूल के दरवाज़े के बगल में स्थित कूड़ादान है। उसमें सारा मोहल्ला कूड़ा फेंकता है और उससे भीषण दुर्गन्ध उठती रहती है।

बच्चों के लिए मिड-डे-मील लाने वाले कर्मचारी, खाना उसी कूड़े के बगल में (लगभग-लगभग कूड़े पर ही) रख जाते हैं।

दरअसल, इन सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले अधिकांश बच्चे उन घरों से आते हैं जिनके घरवालों के लिए ज़िन्दगी का सबसे कठिन और बड़ा काम दो वक्त की दाल-रोटी जुटाना ही है। किसी के पापा दिहाड़ी मज़दूर हैं तो किसी के घरों में पुताई करते हैं, किसी के बस कंडक्टर हैं तो किसी के पापा का मूँगफली का ठेला है। और कुछ-कुछ केवल शराब पीते हैं (जैसा कि उस प्यारी-सी बच्ची ने बताया था, हो सकता है कि उसकी मम्मी कहीं कुछ काम करती हों और पापा सचमुच केवल शराब पीते हों)।

इनमें न जाने कितने बच्चे ऐसे हैं जो खुद भी कुछ काम करते हैं - कोई चाय के होटल में बर्तन माँजता है तो कोई बोरे सिलता है, कोई माँ-बाप के साथ मज़दूरी करने जाता है तो कोई दूसरों के घरों में झाड़ू-पोंछा लगाता है।

ज़ाहिर-सी बात है कि ये बच्चे वक्त-बेवक्त और बात-बेबात पर दूसरों की डाँट और झिड़कियाँ सुनते होंगे। ऐसे में एक समय का खाना सुकून से और भरपेट मिल जाने पर खुश नहीं होंगे तो और क्या?

ये बच्चे खुशी-खुशी अपने-अपने बस्ते में थाली-चम्मच रखकर लाते हैं और इस बात की ज़रा भी फिक्र नहीं करते कि उनके खाने के बर्तन साफ नहीं हैं, उन्हें शौचालय में साफ किया जा रहा है या कूड़े के ढेर के पास रख दिया गया है।

वैसे पूरी तरह यह कहना कि बच्चों के मिड-डे-मील की स्वच्छता पर ध्यान नहीं दिया जाता गलत होगा क्योंकि कहीं-कहीं यह बेहद सफाई से बनाया और खिलाया जाता है लेकिन ऐसा बहुत ही कम जगहों पर है।

कानपुर के अखबारों में न जाने कितनी बार बच्चों के मध्यान्ह भोजन से सम्बन्धित खबरें आती रहती हैं, जैसे - मिड-डे-मील में कॉकरोच पड़ा था, मिड-डे-मील खाकर बच्चे बीमार पड़ गए, आदि।

हो सकता है कि अधिक मात्रा में खाना बनवाने और खिलाने के कारण उसकी साफ-सफाई पर ध्यान देना थोड़ा मुश्किल हो लेकिन इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि बच्चों और अभिभावकों ने इससे समझौता कर लिया है। सरकारी स्कूलों में बच्चों को कॉपी-किताबें, यूनीफॉर्म, बस्ते, खाना सभी कुछ मुफ्त में मिलता है। ज़ाहिर है कि मुफ्त मिलने वाली चीज़ों की गुणवत्ता पर उँगली उठाना बहुत कठिन होता है।

इन अनुभवों के सन्दर्भ में एक और बात दिमाग में कौंधती है कि जब कभी इस योजना के बारे में आस-पास के लोगों से बातचीत होती है तो इतनी खिलाफत क्यों सुनने में आती है? अक्सर शिक्षकों की शिकायत तो समझ में आती है क्योंकि काम की कुछ ज़िम्मेदारी उन पर भी होती है परन्तु इस पर औरों का, बिना उन बच्चों से बातचीत किए जिन्हें इसका फायदा मिलता है, अपना मन, अपनी राय बना लेना कितना वाजिब है?

सभी चित्र: जितेन्द्र ठाकुर

नसीम अख्तर: अँग्रेज़ी साहित्य में स्नातकोत्तर। वर्तमान में मुस्कान संस्था, भोपाल में कार्यरत।